इकाई 3 विभक्त्यर्थ प्रकरण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सूत्र-व्याख्या

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- 'कारक' के लक्षण और अर्थ के विषय में जान सकेंगे।
- 'प्रातिपदिकार्थ' क्या है? इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कारक के समस्त भेदों और सात विभक्तियों के विषय में जान सकेंगे।
- विभक्ति और कारक के बीच सम्बन्ध का ज्ञान कर सकेंगे।
- कारक विभक्ति और उपपद विभक्ति को स्पष्ट रूप से जान सकेंगे।
- मुख्य कर्म और अकथित कर्म को समझ सकेंगे।
- उक्त, अनुक्त, णिजन्त और अणिजन्त का ज्ञान कर सकेंगे।
- आधार के तीन भेदों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ 'लघुसिद्धान्तकौमुदी' में सञ्ज्ञा और सन्धि प्रकरण के बाद अजन्तपुँल्लिङ्ग आदि छः प्रकरणों में 'सु' आदि इक्कीस विभक्ति-प्रत्ययों का विधान किया गया है। इन इक्कीस प्रत्ययों को सात विभक्तियों में विभाजित किया गया है। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होगी, यह बात कारक-प्रकरण में बतायी गई है। अतः इस प्रकरण को 'विभक्त्यर्थप्रकरण' भी कहते हैं।

'कारक' शब्द का एक अर्थ कर्त्ता भी है। यहाँ पर कारक एक पारिभाषिक शब्द है। **'करोति क्रियां निर्वर्तयति इति कारकम् अथवा – 'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' अथवा – 'साक्षात् क्रियाजनक एवं कारकत्वम्'।** अर्थात् जो क्रिया का निमित्त बने, जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय या सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं।

ध्यातव्य है कि 'कारक' क्रिया की निष्पति में लगी हुई द्रव्य-शक्ति है। या हम सरल शब्दों में कह सकते हैं कि क्रिया के साथ साक्षात् या परम्परया सम्बन्ध रखने वाला

तत्त्व ही कारक है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण भेद से यह छः प्रकार का है। 'सम्बन्ध' को कारक नहीं माना जाता क्योंकि यहाँ क्रिया के साथ सम्बन्ध का अभाव रहता है। यथा– 'देवदत्तः **रामस्य** पुस्तकं पठति'। यहाँ पर 'पठति' क्रिया के साथ 'देवदत्त' और 'पुस्तक' का सम्बन्ध तो है किन्तु 'राम' का नहीं। 'राम' का सम्बन्ध पुस्तक के साथ है और पुस्तक क्रिया नहीं अपितु कर्म है। अतः राम में सम्बन्ध में षष्ठी है, कारक में नहीं। तो, स्पष्ट है कि हम उसीको 'कारक' कहेंगे, जिसका क्रिया के साथ सम्बन्ध होता है। यथा – 'रामः रावणं बणेन सीतायै वनात् गत्वा लंकायां जघान। यहाँ 'जघान' क्रिया है। उसके साथ राम, रावण, बाण, सीता, वन और लंका सभी का सम्बन्ध है; अतः ये सब कारक हैं।

अब कारक के साथ ही विभक्ति पर भी विचार कर लेना चाहिए। जिससे 'संख्या' और 'कारक' का ज्ञान होता है, उसे विभक्ति कहते हैं। यथा – ''संख्याकारकबोधयित्री– विभक्तिः।'' उदाहरण के लिए – 'रामः शिवं भजतिं। अर्थात् 'राम शिव को भजते हैं।' यहाँ पर 'रामः' में प्रथमा विभक्ति एवं 'शिवं' में द्वितीया विभक्ति क्रमशः कर्त्ता और कर्म कारक का बोध करा रही है। साथ ही एकवचन का भी ज्ञान हो रहा है। विभक्ति भी दो प्रकार की है। एक कारक विभक्ति, दूसरी उपपद विभक्ति जो पद-विशेष के कारक होती है। 'रामः ग्रामं गच्छति' यहाँ पर 'रामः' में प्रथमा और 'ग्रामम्' में द्वितीया का सम्बन्ध गच्छति क्रिया से है। अतः ये दोनों कारक-विभक्तियाँ है। 'शिवाय नमः' में 'शिवाय' पद में चतुर्थी विभक्ति 'नमः' पद के योग में है। अतः यह उपपद विभक्ति है। कारक विभक्ति उपपद-विभक्ति से बलवान् होती है। शेष व्याख्या-खण्ड के विधिवत् अध्ययन से आप स्वयं जान सकेंगे।

3.2 सूत्र-व्याख्या

सूत्र – प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा ।2।3।46।।

वृत्ति –नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। प्रातिपदिकार्थमात्रे – उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्। लिङ्गमात्रे – तटः, तटी, तटम्। परिमाणमात्रे – द्रोणो व्रीहिः। वचनं संख्या – एकः, द्वौ, बहवः।

अर्थ – प्रातिपदिकार्थ मात्र, लिङ्गमात्र, परिमाणमात्र और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। यहाँ पर मात्रे का अन्वय प्रत्येक के साथ होता है। सूत्रार्थ हुआ– प्रातिप्रदिकार्थ (व्यक्ति और जाति) मात्र में, परिमाण (वजन) मात्र में, लिङ्ग (स्त्रीलिङ्ग, पुँल्लिङ्ग, नपुँसकलिङ्ग) मात्र में और वचन (एकत्व, द्वित्व, बहुत्व विशिष्ट संख्या) मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

व्याख्या – 'प्रातिपदिकार्थः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'लिङ्गम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'परिमाणम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'वचनम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, च इत्यव्ययपदम्। **समास** – प्रातिपदिकार्थश्च, लिङ्गश्च, प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण वचनमात्रम्; तस्मिन् प्रातिपदिकार्थलिङ्ग परिमाणवचनमात्रे सप्तम्यन्तं, प्रथमान्तं, द्विपदमिंद सूत्रम्। किसी शब्द का उच्चारण करने पर जिस अर्थ की प्रतिपत्ति (ज्ञान) नियत रूप से (बिना किसी व्यवधान के) होती है, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं अथवा

शब्द से निश्चित वाच्यार्थ की उपस्थिति को 'प्रातिपदिकार्थ' कहते हैं। 'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्' सूत्र में अर्थवान् शब्द को प्रातिपदिक कहा गया है। उसी प्रातिपदिक के अर्थ (जाति, व्यक्ति) को प्रातिपदिकार्थ कहा जाता है। यह प्रातिपदिकार्थ शब्द का वाच्यार्थ ही होता है। उपर्युक्त सूत्र में द्वन्द्व समास है और द्वन्द्व समास के अन्त में आया हुआ शब्द पूर्व के सभी पदों के साथ सम्बद्ध होता है। सूत्र में चार मानक निश्चित किये गये हैं– प्रातिपदिकार्थ, लिङ्ग, परिमाण और वचन। इन चारों के साथ अन्त में आये हुए 'मात्र' शब्द का योग होता है, (द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते) यह अर्थ हुआ।

अब सूत्रार्थ हुआ – प्रातिपदिकार्थ मात्र में, प्रातिपदिकार्थ होते हुए लिङ्गमात्र की अधिकता होने पर, प्रातिपदिकार्थ होते हुए परिमाणमात्र की अधिकता होने पर और प्रातिपदिकार्थ होते हुए संख्यामात्र की भी प्रथमा विभक्ति होती है। ध्यान रहे प्रातिपदिकार्थमात्र तो सब में रहता ही है। अब सभी का क्रमशः उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। यथा–

क) **प्रातिपदिकार्थमात्रे** – प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। किसी शब्द के उच्चारण करने पर नियत रूप से जिस अर्थ की उपस्थिति हो, ऐसे प्रातिपदिकार्थ से प्रथमा विभक्ति होती है, जैसे – उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्, आदि। इनके उच्चारणमात्र से ही ऊपर, नीचे, भगवान् श्रीकृष्ण, लक्ष्मीजी और ज्ञान– ये अर्थ स्वतः बिना किसी बाधा के उपस्थित हो रहे हैं। अतः ये वहाँ प्रातिपदिकार्थ माने गये हैं और प्रातिपदिकार्थमात्र में इनमें प्रथमा विभक्ति का विधान हुआ।

ख) **लिङ्गमात्राधिक्ये** – कोई भी शब्द ऐसा नहीं है – जो केवल अपने लिङ्ग को ही कहे। अतः लिङ्गविशिष्ट प्रातिपदिकार्थ में ही प्रथमा होती है। अतः प्रकृत सूत्र में लिङ्गमात्र का ग्रहण प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्गमात्र के आधिक्य के लिए है, जैसे – तटः, तटी, तटम्। यहाँ पर प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्गमात्र की अधिकता होने पर प्रकृत सूत्र से प्रथमा विभक्ति हो जाती है।

ग) **परिमाणमात्रे** – परिमाणमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। आशय यह है कि जब किसी शब्द से प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त परिमाण (माप) अर्थ की प्रतीति हो तो उसमें प्रथमा विभक्ति होती है, यथा– 'द्रोणो व्रीहिः' (द्रोण रूप परिमाण से नापा हुआ धान)। वहाँ पर 'द्रोण' प्रातिपदिक से 'परिमाण-सामान्य' अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। द्रोण स्वयं 'परिमाण-विशेष' है। अतः परिमाण-सामान्य में प्रथमा विभक्ति होकर विशेष और सामान्य में अभेदान्वय हो जाता है। अब हो गया – 'द्रोणः'। 'द्रोणः' का 'व्रीहिः' से अन्वय होने पर परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव की प्रतीति होती है। परिच्छेदक 'द्रोणः' विशेषण और परिच्छेद्य 'व्रीहिः' विशेष्य है। अतः 'द्रोणो व्रीहिः' का अर्थ हुआ – 'द्रोणरूप जो परिमाण, उससे नापा गया व्रीहि या धान। यहाँ 'द्रोणः' में प्रथमा परिमाणमात्र में हुई है।

घ) **वचनमात्रे** – 'वचन' का अर्थ संख्या है। अतः संख्यामात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। उदाहरणार्थ – एकः, द्वौ, वहवः। यहाँ संख्या-मात्र अर्थ को घोतित करने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। यहाँ एक, द्वि, बहु स्वतः संख्या होते हुए भी इनसे संख्या अर्थ की अधिकता में प्रथमा विभक्ति हुई है, जिससे ये पद बन सकें। इन

तीनों शब्दों से प्रातिपदिकार्थमात्र होते हुए संख्यामात्र की विशेषता में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' से प्रथमा विभक्ति हुई।

सूत्र – सम्बोधने च ।2।3।47।।

वृत्ति – प्रथमा स्यात्। हे राम!

अर्थ – 'सम्बोधने' सप्तमी विभक्ति एकवचन, च इत्यव्ययपदम्। इस सूत्र में प्रातिपदिकार्थलिङ्ग सूत्र से 'प्रथमा' की अनुवृत्ति आती है। अब अर्थ हुआ – सम्बोधन अर्थ में भी प्रथमा विभक्ति होती है। सम् = अभिमुखीकृत्य बोधनम् = ज्ञापनम् अर्थात् किसी व्यक्ति को (कुछ कहने के लिए) अपनी ओर अभिमुख करना ही 'सम्बोधन' कहलाता है। अतः भाव यह हुआ कि, ''प्रातिपदिकार्थ से सम्बोधन अर्थ की अधिकता होने पर प्रथमा विभक्ति होती है, यथा– हे राम! यहाँ 'राम' को अपनी ओर अभिमुख कर कुछ कहना है। यह अभिमुखीकरण ही 'सम्बोधन' होता हैं। उसमें प्रथमा विभक्ति 'सु' आयी। उसका 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से लोप होकर हे राम! यह पद बना।

सूत्र – कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।1।4।49।।

वृत्ति –कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

अर्थ – कर्ता को क्रिया के द्वारा जो वस्तु अत्यन्त इष्ट होती है, उसकी (कारक की) कर्म संज्ञा होती है।

व्याख्या – 'कर्तुः' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'ईप्सिततमम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'कर्म' प्रथमा विभक्ति एकवचन। एक वाक्य में मुख्यतः कर्ता, कर्म, क्रिया का प्राधान्य होता है। वाक्य में 'कर्म' किसे कहें? यह जानने के लिए इस सूत्र की भावना की गयी है। सूत्र से स्पष्ट है कि कर्ता (अपनी) क्रिया के द्वारा जिसे सर्वाधिक चाहता है, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है या उसे कर्म कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि कर्ता अपनी क्रिया द्वारा जिसे विशेष रूप से प्राप्त करना चाहता है, उसे 'कर्म' कहते हैं, जैसे –देवदत्तः ओदनं पचति' (देवतत्त चावल पकाता है)। इस वाक्य में कर्ता 'देवदत्त' 'पचति' क्रिया के द्वारा 'ओदन' को विशेष रूप से प्राप्त करना चाहता है; अतः अत्यन्त अभीष्ट होने से 'ओदन' की 'कर्म' संज्ञा हुई।

सूत्र – कर्मणि द्वितीया ।2।3।2।।

वृत्ति – अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि प्रथमा – हरिः सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितो हरिः।

अर्थ – अनभिहित (अनुक्त) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है, यथा – हरिं भजति (हरि को भजता है)। अभिहित (उक्त) कर्म में तो (प्रातिपदिकार्थलिङ्ग. सूत्र से) प्रथमा विभक्ति ही होती है, यथा – 'हरि सेव्यते' (हरि की सेवा की जाती है), 'लक्ष्म्या सेवितो हरिः' (लक्ष्मी के द्वारा हरि की सेवा की जाती है)।

व्याख्या – 'कर्मणि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'द्वितीया' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अनभिहिते' सप्तमी विभक्ति एकवचन। सूत्रार्थ है – (कर्मणि) कर्म में (द्वितीया) द्वितीया विभक्ति होती है। यहाँ पर 'अनभिहिते 2/3/1' का अधिकार प्राप्त है। अतः पूर्ण

सूत्रार्थ हुआ – 'अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। 'अनभिहित' का अर्थ है – अनुक्त, जो न कहा गया हो। जिस अर्थ में प्रत्यय होता है, वह उक्त होता है और उससे भिन्न अर्थ अनुक्त। यह उक्त अनुक्त होना पाँच हेतुओं पर आश्रित है। यथा– 1. तिङ्, कृत्, तद्धित, समास एवं निपात। इसका विस्तृत विवेचन 'सिद्धान्तकौमुदी' के कारक प्रकरण में देखना चाहिए। अब पुनः हम कह सकते हैं कि जिस अर्थ में प्रत्यय होता है, वह अर्थ उक्त एवं तद्भिन्न अनुक्त होता है। जब 'कर्म' में लकार आता है तो 'कर्म' उक्त होता है और जब कर्त्ता में लकार आता है। तो कर्म अनुक्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में कर्मवाच्य में कर्म उक्त होता है और कर्तृवाक्य में कर्म अनुक्त। इसी कर्तृवाच्य में ही कर्म के अनुक्त होने पर उसमें द्वितीया होती है। यही सूत्र का फलितार्थ है। उदाहरणार्थ – 'देवदत्तः ओदनं पचति' में कर्तृवाच्य की क्रिया 'पचति' के द्वारा कर्त्ता 'देवदत्त' उक्त है और कर्म 'ओदन' अनुक्त। अतः अनुक्त कर्म 'ओदन' में 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति होकर 'ओदनं' रूप बना।

किन्तु कर्मवाच्य में कर्म के उक्त होने पर उसमें द्वितीया विभक्ति नहीं होती, अपितु 'प्रातिपदिकार्थ.' सूत्र से प्रथमा होती है, यथा– 'हरिः सेव्यते' में सेव्यते क्रिया कर्मवाच्य की है। अतः कर्म 'हरि' उक्त हुआ। अब उक्त कर्म 'हरि' में 'प्रातिपदिकार्थ.' सूत्र से प्रथमा विभक्ति एक वचन 'सु' होकर 'हरिः' पद बना। यही स्थिति 'लक्ष्म्या सेवितो हरिः' में भी है।

सूत्र – अकथितं च ।1।4।51।।

वृत्ति – अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

''दुह्-याच्-पच्-दण्ड-रुधि प्रच्छि-चि-ब्रू-शास्-जि-मथ्-मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी ह्व-कृष्-वहाम्।।''

गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तुण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजमवरुवणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षम् अवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते-अभिधत्ते-वक्ति इत्यादि।

अर्थ – अपादानादि विशेष से अविवक्षित कारक की कर्म संज्ञा होती है। दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (चुनना), ब्रू (कहना), शास् (उपदेश देना), जि (जीतना), मथ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), ह्व (ले जाना), कृष् (खींचना), वह् (पहुँचाना) – इन सोलह धातुओं के प्रमुख = प्रधान कर्म से युक्त अपादान आदि विशेष संज्ञाओं की विवक्षा न होने पर 'कर्म' संज्ञा हो जाती है, यथा – 'गां दोग्धि पयः' इत्यादि में। यह इन सोलह की समानार्थक धातुओं में भी सम्भव है।

व्याख्या – 'अकथितम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, च इत्यव्ययपदम्, 'कर्म' प्रथमा विभक्ति एकवचन, ('कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से)। यहाँ सूत्रार्थ केवल इतना है – (च) और (अकथितम्) अकथित। यहाँ सूत्रस्थ 'च' पद से ही ज्ञात हो जाता है कि यह सूत्र अपूर्ण है। इसके स्पष्टीकरण के लिए 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से 'कर्म' की अनुवृत्ति आती है। अतः अब सूत्रार्थ होगा – ''अपादानादि विशेषों से अविवक्षित कारक कर्म-संज्ञक

होता है।'' कहने का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त सोलह धातुओं की दशा में यदि कर्ता अपादानादि को अपादानादि के रूप में न कहना चाहे, तो उनकी (अपादानादि की) 'कर्म' संज्ञा होती है।

यह स्थिति द्विकर्मक धातुओं में ही होती है। जिस वाक्य में इस 'अकथितं च' सूत्र की प्रवृत्ति होगी, उस वाक्य की धातु द्विकर्मक ही होगी। ऐसी द्विकर्मक धातुओं की संख्या सोलह है। दो कर्म होने से एक प्रधान कर्म होगा जिसे 'इष्टतम कर्म' कहते हैं और एक 'अप्रधान कर्म' होगा जिसे 'अकथित कर्म' कहते हैं। यहाँ एक बात और ध्यान देने की है कि अपादानादि की कर्म संज्ञा भी होगी और पक्ष में विवक्षा होने पर अपादानादि संज्ञा भी कही जायेगी, जैसे – 'गां दोग्धि पयः'। यहाँ 'अकथितं च' से 'गो' की अपादान की अविवक्षा में' कर्म संज्ञा होकर 'गां' पद बना। किन्तु विवक्षा होने पर 'गोः दोग्धि पयः' ही बनेगा। अब इनके उदाहरण निम्नवत् हैं–

क) गां दोग्धि पयः – यहाँ पर 'गाय से दूध दुहता है' – ऐसा अर्थ निकलने के कारण 'गाय' अपादान कारक है, किन्तु उसकी विवक्षा न होने से 'अकथितं च' सूत्र द्वारा 'गो' की कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति का विधान होकर 'गां' पद बना। यदि अपादान की विवक्षा होगी तो 'अपादाने पञ्चमी' से 'गो' में पञ्चमी विभक्ति होकर 'गोः दोग्धि पयः' ही बनेगा।

ख) बलिं याचते वसुधाम् (बलि से पृथ्वी माँगता है) – यहाँ भी 'बलि' अपादान कारक है, किन्तु उसकी अविवक्षा होने पर पूर्ववत् कर्म संज्ञा होकर 'बलिम्' रूप बना।

ग) तण्डुलान् ओदनं पचति (चावलों से भात पकाता है) – यहाँ 'तण्डुल' करण कारक है, किन्तु करण की अविवक्षा होने पर कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई और बहुवचन में 'तण्डुलान्' रूप बना।

घ) गर्गान् शतं दण्डयति (गर्गों को सौ रूपये का जुर्माना करता है) – यहाँ 'गर्ग' अपादान कारक है किन्तु अपादान की अविवक्षा में कर्म संज्ञा होकर 'गर्गान्' रूप बना।

ङ) व्रजम् अवरुणद्धि गाम् (बाड़े में गाय को रोकता है) – यहाँ पर 'व्रज' (बाड़ा) अधिकरण कारक है किन्तु अधिकरण की विवक्षा न होने पर पूर्ववत् कर्म-संज्ञा होकर 'व्रजम्' पद बना। ध्यान रहे कि कर्म-संज्ञा होने पर 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति होकर ही 'व्रजम्' रूप बनेगा।

च) 'माणवकं पन्थानं पृच्छति' (ब्रह्मचारी बालक से मार्ग पूछता है) – यहाँ 'माणवक' अपादान कारक है किन्तु अपादान की विवक्षा न होने के कारण उसकी कर्म संज्ञा हुई और द्वितीया विभक्ति होकर 'माणवकम्' बना।

छ) वृक्षमवचिनोति फलानि (वृक्ष से फलों को चुनता है) – यहाँ पर 'वृक्ष' अपादान है किन्तु अपादान की अविवक्षा से पूर्ववत् कर्म-संज्ञा होकर और द्वितीया विभक्ति लगकर 'वृक्षम्' बना।

ज) **माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा** (ब्रह्मचारी के लिए धर्म कहता है या उपदेश करता है)– यहाँ 'माणवक' सम्प्रदान कारक है उसकी अविवक्षा होने पर कर्म-संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई।

झ) **शतं जयति देवदत्तम्** (देवदत्त से सौ रूपये जीतता है) – यहाँ पर 'देवदत्त' अपादान कारक है किन्दु अपादान की अविवक्षा होने पर कर्म-संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई।

ञ) **सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति** (समुद्र को अमृत के लिए मथता है) – यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि कुछ विद्वान् सुधा को प्रधान कर्म मानते है और कुछ लोग 'क्षीरनिधि' को। यदि 'सुधा' प्रधान कर्म होगा तो 'क्षीरनिधि' अपादान की 'अकथितं च' से कर्म संज्ञा होगी और यदि 'क्षीरनिधि' प्रधान कर्म होगा तो 'सुधा' सम्प्रदान की 'अकथितं च' से कर्म संज्ञा होगी। यहाँ दोनों ही दृष्टियों से विचार करना चाहिए।

ट) **देवदत्तं शतं मुष्णाति** (देवदत से सौ रूपये चुराता है) – यहाँ 'देवदत्त' अपादान कारक है किन्तु उसकी अविवक्षा होने पर कर्म-संज्ञा होने पर 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति होकर 'देवदत्तं' रूप बना।

ठ) **ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा** (गाँव में बकरी को ले जाता है, खींचता है या पहुँचाता है) – यहाँ ग्राम 'अधिकरण' कारक है किन्तु अधिकरण की अविवक्षा में 'अकथितं च' से 'ग्राम' की कर्म-संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति होकर – 'ग्रामम्' रूप सिद्ध हुआ।

उपर्युक्त सोलह धातुओं की समानार्थक धातुओं में भी यही स्थिति होती है। 'याच्' की समानार्थक 'भिक्ष्' धातु के होने पर '**बलिं भिक्षते वसुधाम्**' में अपादान 'बलि' की कर्म संज्ञा हुई। 'ब्रू' की समानार्थक 'भाष्' धातु में –'**माणवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते, वक्ति वा**' की स्थिति में 'माणवक' इस सम्प्रदान की अविवक्षा होने पर कर्म संज्ञा हुई और कर्म में द्वितीया विभक्ति होकर 'माणवकम्' रूप बना।

सूत्र – स्वतन्त्रः कर्ता ।1।4।54।।

वृत्ति – क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

अर्थ – क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित अर्थ की 'कर्त्ता' संज्ञा होती है।

व्याख्या – 'स्वतन्त्रः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'कर्ता' प्रथमा विभक्ति एकवचन। 'कारके' का अधिकार पहले से ही आ रहा है। यह सूत्र ण्यन्त-प्रक्रिया में आ चुका है। क्रिया की सिद्धि में जो प्रधान होता है, जिसके बिना क्रिया असम्भव है, क्रिया की सिद्धि में जो स्वतन्त्र है, उसी को कर्ता कहते हैं, जैसे – 'रामः ग्रामं गच्छति'। यहाँ कर्ता 'राम' गमन क्रिया (गच्छति) के प्रति स्वतन्त्र है। वह चाहे तो गाँव जाये और चाहे तो न जाये।

संज्ञासूत्र – साधकतमं करणम् ।1।4।42।।

वृत्ति – क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

अर्थ – क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करण-संज्ञा होती है।

व्याख्या – 'साधकतमम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'करणम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'कारके ।1।4।23।।' इत्यधिकृतम्। सूत्रार्थ केवल इतना है कि – '(साधकतमम्) अत्यन्त सहायक (करणम्) करण कहलाता है। यहाँ 'कारके' सूत्र का अधिकार प्राप्त है। अतः भावार्थ हुआ – 'क्रिया की सिद्वि में अत्यन्त सहायक कारक की 'करण' संज्ञा होती है। जिसके व्यापार के ठीक बाद ही क्रिया की सिद्धि होती है, उसे 'अत्यन्त सहायक' कारक कहते हैं, यथा – 'रामेण बाणेन हतो बाली' (राम ने बाण से बाली को मारा, या राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया)। यहाँ राम के व्यापार के अनन्तर ही हनन क्रिया होती है। अतः अत्यन्त सहायक या प्रकृष्ट सहायक होने से 'बाण' की 'करण' संज्ञा हुई।

सूत्र – कर्तृकरणयोस्तृतीया ।2।3।18।।

वृत्ति – अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली।

अर्थ – अनभिहित (अनुक्त) कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है, यथा – 'रामेण बाणेन हतो बाली' (राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया)।

व्याख्या – 'कर्तृकरणयोः' सप्तमी विभक्ति द्विवचन, 'तृतीया' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अनभिहिते' सप्तमी विभक्ति एकवचन, (अधिकृतम्)। सूत्र का अर्थ है – (कर्तृकरणयोः) कर्म और करण में तृतीया विभक्ति होती है। इसके स्पष्टीकरण के लिए अधिकार सूत्र 'अनभिहिते ।2।3।1।। की अनुवृत्ति करनी होगी। इसका अन्वय सप्तम्यन्त पद 'कर्तरि' से होता है। अब सूत्र का भावार्थ हुआ – ''अनभिहित (अनुक्त) कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है।'' यथा – 'रामेण बाणेन हतो बाली' (राम के बाण द्वारा बाली मारा गया)। यहाँ हनन क्रिया में स्वतन्त्र होने से 'स्वतन्त्रः कर्ता' सूत्र से **राम** कर्ता है। इसी प्रकार हनन क्रिया में अत्यन्त सहायक होने से 'साधकतमं करणम्' से बाण की करण संज्ञा हुई। यहाँ पर हन् धातु से कर्म अर्थ में 'क्त' प्रत्यय होने से कर्म 'बाली' उक्त हुआ और कर्म के उक्त होने से कर्ता करण आदि स्वतः अनुक्त हो गये। अतः 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' सूत्र से अनुक्त कर्ता 'राम' और अनुक्त करण 'बाण' दोनों में तृतीया विभक्ति होकर – 'रामेण' और 'बाणेन' प्रयोग बना।

संज्ञा सूत्र – कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।1।4।32।।

वृत्ति – दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

अर्थ – (कर्ता) दान-क्रिया के कर्म द्वारा जिससे सम्बन्ध स्थापित करता है या करना चाहता है, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है।

व्याख्या – 'कर्मणा' तृतीया विभक्ति एकवचन, 'यम्' द्वितीया विभक्ति एकवचन, 'स' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'सम्प्रदानम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, अभिप्रैति क्रिया पदम् प्रथम पुरुषैकवचनम्। यहाँ 'कारके' सूत्र का अधिकार है। यहाँ कर्म का अभिप्राय दानक्रिया के कर्म से है। इस प्रकार सूत्र का पूर्ण भावार्थ हुआ कि – ''दान क्रिया के कर्म के द्वारा कर्ता जिससे सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, उसकी 'सम्प्रदान कारक' संज्ञा होती है, यथा – 'विप्राय गां ददाति' (ब्राह्मण को गाय देता है)।

यहाँ कर्ता (यजमान आदि) गोदान कर्म के द्वारा 'विप्र' से सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, अतः 'विप्र' की सम्प्रदान कारक संज्ञा हुई।

सूत्र – चतुर्थी सम्प्रदाने 2।3।13।।

वृत्ति – (अनुक्ते) सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्। 'विप्राय गां ददाति'।

अर्थ – (अनुक्त) सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है।

व्याख्या – 'चतुर्थी' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'सम्प्रदाने' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'अनभिहिते' सप्तमी विभक्ति एकवचन, (अधिकृतम्)। अनुक्त या अनभिहित सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है, यथा – '(यजमानः) **विप्राय** गां ददाति' यहाँ पर दान क्रिया (ददाति) के द्वारा अभिप्रेत 'विप्र' की 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा हुई और पुनः 'चतुर्थी सम्प्रदाने' सूत्र से 'विप्र' में चतुर्थी विभक्ति एकवचन में 'विप्राय' रूप बना।

सूत्र – नमः-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधा-ऽलं वषड्योगाच्च ।2।3।16।।

वृत्ति – एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम्, तेन 'दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभुः, समर्थः शक्तः' इत्यादि। इन्द्राय वषट्।

अर्थ – नमः, स्वस्ति, स्वाहा स्वधा, अलं, वषट् के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है।

व्याख्या – 'नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगात्' पंचमी विभक्ति एकवचन, च इत्यव्ययपदम्, 'चतुर्थी' प्रथमा विभक्ति एकवचन ('चतुर्थी सम्प्रदाने' से अनुवृत्ति)। यहाँ सूत्रस्थ 'च' पद से ही ज्ञात हो जाता है कि यह सूत्र अपने आप में पूर्ण नहीं है। इसके स्पष्टीकरण के लिए 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से 'चतुर्थी' की अनुवृत्ति आवश्यक है। अतः सूत्रार्थ होगा – ''नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (पर्याप्त, समर्थ) और वषट् – इन छः अव्ययों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है'' अर्थात् जिन शब्दों से इन अव्ययों का योग होता है, उनमें चतुर्थी विभक्ति होती है। ध्यान देने की बात है कि यहाँ चतुर्थी विभक्ति 'कारके' के अधिकार में नहीं होने के कारण 'उपपद विभक्ति' है। यह चतुर्थी विभक्ति 'नमः' आदि के योग में है। इनके उदाहरण निम्वत् हैं–

क) हरये नमः (हरि को नमस्कार है)– यहाँ 'नमः' के योग में 'हरि' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

ख) प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजाओं का कल्याण हो) – यहाँ पर 'स्वस्ति' के योग में 'प्रजा' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

ग) अग्नये स्वाहा (अग्नि को हविदान) – यहाँ पर 'स्वाहा' के योग में 'अग्नि' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

घ) पितृभ्यः स्वधा (पितरों के लिए आहुति है) – यहाँ पर 'स्वधा' के योग में 'पितृ' में चतुर्थी विभक्ति हुई।

ङ) दैत्येभ्यो हरिः अलम् (हरि दैत्यों के लिए पर्याप्त हैं) – यहाँ पर 'अलं' के योग में 'दैत्य' में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ।

च) इन्द्राय वषट् (इन्द्र के लिए हवि है) – यहाँ 'वषट्' के योग में 'इन्द्र' में चतुर्थी हुई। ध्यातव्य बिन्दु यह है कि 'वषट्' का प्रयोग केवल वेदों में ही होता है।

नोट – यहाँ सूत्र में 'अलम्' से केवल 'अलम्' अव्यय का ही ग्रहण नहीं होता, अपितु 'अलम्' अर्थवाचक 'समर्थः', 'शक्तः' आदि पदों का भी ग्रहण होता है। अतः इन पदों के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है, यथा – 'दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः, समर्थः, शक्तो वा' में 'अलम्' अर्थवाची 'प्रभुः' आदि के योग में भी चतुर्थी विभक्ति हुई है।

सूत्र – ध्रुवमपायेऽपादानम् ।1।4।24।।

वृत्ति – अपायो विश्लेषः, तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवम् अवधिभूतं कारकं तदपादानं स्यात्।

अर्थ – अलग होने या पृथक् होने को विश्लेष या 'अपाय' कहते हैं। अलग होने की प्रक्रिया में अवधिभूत (ध्रुव, स्थिर, अचल) कारक की अपादान संज्ञा होती है।

व्याख्या – 'ध्रुवम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अपाये' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'अपादानम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'कारके' सप्तमी विभक्ति एकवचन (इत्यधिकृतम्)। यहाँ पर 'कारके' का अधिकार प्राप्त है। 'ध्रुव' का अर्थ है – निश्चित, अचल, स्थिर जो अपने स्थान से हटे नहीं। अब सूत्र का पूर्ण भावार्थ होगा– ''अलग होने की प्रक्रिया में (जिससे कोई वस्तु या व्यक्ति अलग होता है, उस) ध्रुव, स्थिर या अचल कारक की अपादान संज्ञा होती है।'' दूसरे शब्दों में जिस वस्तु से कोई वस्तु अलग होती है, उसी की 'अपादान' संज्ञा होती है, यथा – 'रामः ग्रामाद् आयाति' (राम गाँव से आता है)। यहाँ पर 'राम' गाँव से आता है किन्तु 'गाँव' अपनी जगह स्थिर है। वह कहीं नहीं जाता। अतः स्थिर या अवधिभूत 'गाँव' की उक्त सूत्र से 'अपादान' संज्ञा हुई।

सूत्र – अपादाने पञ्चमी ।2।3।28।।

वृत्ति – ग्रामाद् आयाति। धावतोऽश्वात् पतति, इत्यादि।

अर्थ – अपादान (कारक) में पंचमी विभक्ति होती हैं।

व्याख्या – 'अपादाने' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'पञ्चमी' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'कारके' सप्तमी विभक्ति एकवचन (अधिकृतम्)। यहाँ 'कारके' में पंचमी विभक्ति होती है।'' यथा– 'ग्रामाद् आयाति' {(वह) गाँव से आता है} – यहाँ अवधिभूत या स्थिर होने के कारण गाँव की 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' से अपादान संज्ञा हुई और 'अपादाने पञ्चमी' से पंचमी का प्रयोग होकर – 'ग्रामात्/ग्रामाद्' बना। इसी प्रकार 'धावतोऽश्वात् पतति' में अश्व के अपादान संज्ञक होने से उसकी अपादान संज्ञा हुई और 'अश्व' में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग हुआ।

सूत्र – षष्ठी शेषे ।2।3।50।।

वृत्ति – कारक-प्रातिपदिकार्थ व्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिः सम्बन्धः शेषः, तत्र षष्ठी। राज्ञः पुरुषः। कर्मादीनाम् अपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधो दकस्योपस्कुरुते। भजे शम्भोश्चरणयोः।

अर्थ – शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है अर्थात् कारक, प्रातिपदिक से भिन्न स्व.स्वामिभाव सम्बन्ध को 'शेष' कहते है और उसी शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

व्याख्या – 'षष्ठी' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'शेषे' सप्तमी विभक्ति एकवचन। यह सूत्र शेष अर्थ में षष्ठी का विधान करता है। शेष अर्थात् बचा हुआ। इस सूत्र से पहले प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण – इन सम्बन्धों को बताया गया है। इनमें क्रमशः प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी विभक्ति का विधान है। जहाँ पर वे सम्बन्ध या संज्ञाएँ नहीं हुई हैं, वही शेष है। शेष कई प्रकार के सम्बन्धों से जुड़ा है, जैसे – स्व-स्वामिभावसम्बन्ध (एक स्वामी और दूसरी वस्तु), अवयवावयविभावसम्बन्ध (एक अंग और दूसरा अंगी), जन्यजनकभावसम्बन्ध (एक उत्पन्न करने वाला और दूसरा उत्पन्न होने वाला), प्रकृतिविकृतिभावसम्बन्ध (एक प्रकृति और दूसरी उससे होने वाली विकृति या विकार) आदि। ध्यातव्य बिन्दु यह है कि – ''प्रत्ययार्थस्य प्रकृत्यर्थ प्रति प्राधान्यादप्रधानादेव षष्ठी' परिभाषा से अप्रधान (विशेषण) में ही षष्ठी विभक्ति होती है। इनके उदाहरण निम्नवत् हैं–

क) राज्ञः पुरुषः (राजा का आदमी) – यहाँ 'राजा' स्वामी है और 'पुरुष' स्व है। स्व-स्वामिभावसम्बन्ध मानकर 'राजन्' से षष्ठी विभक्ति हुई – राज्ञः पुरुषः।

ख) मम गृहम् (मेरा घर) – यहाँ पर **मैं** 'स्वामी' हूँ और **मेरा घर** 'स्व' है। यहाँ पर भी पूर्ववत् स्व-स्वामिभावसम्बन्ध में 'अस्मत्' शब्द में षष्ठी विभक्ति हुई – 'मम' बना।

ग) वृक्षस्य शाखा (वृक्ष की डाल) – यहाँ डाल 'अवयव' है और वृक्ष 'अवयवी'। अवयवावयविभावसम्बन्ध मानकर 'वृक्ष' में षष्ठी होकर – 'वृक्षस्य' बना।

घ) पितुः पुत्रम् (पिता का पुत्र) – यहाँ पर पिता 'जनक' है और पुत्र 'जन्य'। जन्यजनकभावसम्बन्ध मानकर 'पितृ' शब्द से षष्ठी विभक्ति होकर – 'पितुः' बना।

ङ) सुवर्णस्य कङ्कणम् (सोने का कंगन) – सोना 'प्रकृति' है, उससे बना हुआ कंगन उसकी विकृति' या 'विकार' है। तो, प्रकृतिविकृतिभावसम्बन्ध में 'शेषे षष्ठी' से 'सुवर्ण' में षष्ठी विभक्ति होकर 'सुवर्णस्य' बना।

कर्म आदि कारकों की सम्बन्ध मात्र विवक्षा में भी षष्ठी विभक्ति ही होती है। भाव यह है कि यदि सम्बन्ध मात्र ही को दिखाना हो तो, कर्म आदि कारकों में भी षष्ठी विभक्ति ही होती है, यथा–

क) सतां गतम् – (सत्पुरुष-सम्बन्धि-गमन) – यहाँ पर कर्ता 'सत्' की सम्बन्ध-मात्र की विवक्षा में षष्ठ्यन्त भावना होकर 'सतः' पद बना।

ख) 'सर्पिषो जानीते' – (घी के द्वारा प्रवृत्त होता है) – यहाँ पर भी सम्बन्ध-मात्र की विवक्षा में करण कारक 'सर्पिष' में षष्ठी विभक्ति हुई है।

ग) मातुः स्मरति – (माता-सम्बन्धी स्मरण करता है) – यहाँ पर कर्म-कारक 'मातृ' में सम्बन्ध-मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हुई है।

घ) 'एधोदकस्योपस्कुरुते' – (लकड़ी जल-सम्बन्धी गुणों को धारण करती है) – यहाँ पर पूर्ववत् कर्म कारक 'एध्' में षष्ठी विभक्ति हुई है।

ङ) **भजे शम्भोश्चरणयोः** (शम्भु के चरणों को भजता हूँ) – यहाँ पर भी सम्बन्ध-मात्र की विवक्षा में कर्म कारक 'चरण' में षष्ठी विभक्ति हुई है।

सूत्र – आधारोऽधिकरणम् ।1।4।45।।

वृत्ति – कर्तृ-कर्म-द्वारा तन्निष्ठ-क्रियाया आधारः कारकम् अधिकरणं स्यात्।

अर्थ – कर्ता और कर्म के द्वारा कर्तृ और कर्मनिष्ठ क्रिया का आधारभूत कारक 'अधिकरण' संज्ञक होता है।

व्याख्या – 'आधारः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अधिकरणम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'कारके' सप्तमी विभक्ति एकवचन, (इत्यधिकृत्य)। 'कारके' का यहाँ अधिकार प्राप्त है। उसका विभक्ति विपरिणाम होकर 'कारकम्' बनता है। आधार का अर्थ है– 'आश्रय'। किसका आश्रय? ऐसी आकांक्षा होने पर 'क्रियायाः' का अध्याहार किया जाता है। 'क्रिया का आधार' यहाँ कर्ता या कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार समझा जाता है। इस प्रकार भावार्थ हुआ, ''कर्ता या कर्म के द्वारा कर्तृनिष्ठ या कर्मनिष्ठ जो क्रिया का व्यापार या फल है, उसके आधार कारक की अधिकरण संज्ञा होती है'' अर्थात् जिसमें क्रिया अधिष्ठित होती है, उसे 'आधार' कहते हैं। उसी आधार की 'अधिकरण कारक' संज्ञा होती है। यह आधार तीन प्रकार का होता है, यथा–

1) **औपश्लेषिक आधार** – उप = समीपे, शलेषः संयोगादिसम्बन्ध उपश्लेषः। उपश्लेष एव औपश्लेषिकः। जहाँ आधेय के साथ आधार का संयोगादि सम्बन्ध हो, उसे 'औपश्लेषिक आधार' कहते हैं, यथा– 'कटे आस्ते' (चटाई पर है)। यहाँ पर 'कट' से बैठने वाले का प्रत्यक्ष संयोग (भौतिक) सम्बन्ध है। अतः 'कट' यहाँ 'औपश्लेषिक आधार' है।

2) **वैषयिक आधार** – विषय का अर्थात् विषयता-सम्बन्ध से आधार। यह आधार बुद्धिस्थ होता है। उसके साथ आधेय का बौद्धिक सम्बन्ध होता है, जैसे– 'मोक्षे इच्छास्ति' (मोक्ष के विषय में इच्छा है)। यहाँ 'मोक्ष' वैषयिक आधार है क्योंकि यह इच्छा का विषय है। इसी प्रकार – 'व्याकरणे रुचिः', 'नारायणे भक्तिः' आदि में भी समझना चाहिए।

3) **अभिव्यापक आधार** – जिसके साथ आधार का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध रहता है उसे 'अभिव्यापक आधार' कहते हैं, उदाहरणार्थ– 'तिलेषु तैलम्' (तिलों में तैल है)। यहाँ 'तिल' अभिव्यापक आधार है क्योंकि उसके सभी अवयवों में तैल है। इसी प्रकार– 'र्स्वस्मिन्नात्मास्ति' (सब में आत्मा है)। यहाँ 'सर्व' अभिव्यापक आधार है। इन तीनों प्रकार के आधारों को 'अधिकरण' कहते हैं।

सूत्र – 'सप्तम्यधिकरणे च' ।2।3।36।।

वृत्ति – अनभिहिते अधिकरणे सप्तमी स्यात्। चकाराद् दूरान्तिकार्थेभ्यः। औपश्लेषिकः वैषयिकः अभिव्यापकश्च इति आधारस्त्रिधा। कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्मास्ति। वनस्य दूरे अन्तिके वा।

अर्थ – अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है। (च) और दूर तथा समीप अर्थवाचक शब्दों से भी।

व्याख्या – 'सप्तमी' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अधिकरणे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, च इत्यव्ययपदम्। यहाँ पर सूत्र में स्थित 'च' पद से ही स्पष्ट है कि यह सूत्र पूर्ण नहीं है। इसके स्पष्टीकरण के लिए 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' 2.3.35 से 'दूरान्तिकार्थेभ्यः' की अनुवृत्ति करनी होगी। इस प्रकार सूत्र का भावार्थ होगा – ''अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है; और दूर तथा अन्तिक (निकट) अर्थवाचक शब्दों से भी (सप्तमी विभक्ति होती है)। दूसरे शब्दों में, अधिकरण और दूर तथा समीप अर्थवाचक शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है।'' उदाहरणार्थ– 'कटे आस्ते' (चटाई पर है) में 'कट' आधार होने से अधिकरण है; अतः 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र से उसमें सप्तमी विभक्ति होकर 'कटे' रूप बना। इसी प्रकार 'स्थाल्यां पचति' (बटलोई में पकाता है) में अधिकरण 'स्थाली' में सप्तमी विभक्ति होकर 'स्थाल्याम्' बना। 'मोक्षे इच्छास्ति' (मोक्ष विषय इच्छा है) में अधिकरण 'मोक्ष' में, 'सर्वस्मिन्नात्मास्ति' में अधिकरण 'सर्व' में सप्तमी विभक्ति होकर 'मोक्षे' और 'सर्वस्मिन्' रूप बने। 'दूर' तथा 'समीप' अर्थवाचक शब्दों का उदाहरण– 'वनस्य दूरे अन्तिके वा' (वन से दूर या निकट)। यहाँ दूर अर्थवाचक 'दूर' तथा 'समीप' अर्थवाचक शब्दों का उदाहरण– 'वनस्य दूरे अन्तिके वा' (वन से दूर या निकट)। यहाँ दूर अर्थवाचक 'दूर' तथा समीप अर्थवाचक 'अन्तिक' शब्द में सप्तमी विभक्ति होकर 'दूरे' और 'अन्तिके' रूप बने।

1. निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प का चयन कीजिए –

i) कारक हैं –

(अ) पाँच, (ब) सात, (स) छः, (द) नौ

ii) प्रातिपदिकार्थ है –

(अ) विकल्प से उपस्थिति (ब) नियत उपस्थिति

स) अनियत उपस्थिति (द) अनुपस्थिति

iii) उक्त कर्म में होती है –

(अ) प्रथमा (ब) द्वितीया

(स) पञ्चमी (द) तृतीया

iv) 'स्वस्ति' के योग में विभक्ति होती है–

(अ) तृतीया (ब) द्वितीया

(स) पञ्चमी (द) चतुर्थी

V) 'नारायणे भक्तिः' में है–

(अ) वैषयिक आधार, (ब) औपश्लेषिक आधार,

(स) अभिव्यापक आधार (द) कोई नहीं

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क) स्व-स्वामिभाव सम्बन्ध में ..... होती है।

ख) 'तिलेषु तैलम्' में ..... है।

ग) 'नमः' पद के योग में ..... होती है।

घ) अप्रधान कर्म को ..... कहते हैं।

ङ) आधार के साथ आधेय का संयोग सम्बन्ध ..... कहलाता है।

3. **नीचे दिए गए प्रश्नों में से सही/गलत कथन का चयन कीजिए –**

क) अनुक्त कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है – (सही/गलत)

ख) 'वृक्षस्य शाखा' में स्व–स्वामिभाव सम्बन्ध है – (सही/गलत)

ग) षष्ठी विभक्ति अप्रधान में होती है – (सही/गलत)

घ) सम्बोधन में द्वितीया विभक्ति होती है – (सही/गलत)

4. **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।**

क) कारक कितने हैं? उनके नाम लिखिए।

ख) अभिव्यापक आधार की परिभाषा और उदाहरण लिखिए।

ग) कारक किसे कहते हैं?

घ) करण संज्ञा को स्पष्ट कीजिए।

ङ) 'अलम्' के योग में' कौन-सी विभक्ति होती है?

अभ्यास प्रश्न

क) 'प्रातिपदिकार्थ' को स्पष्ट कीजिए।

ख) कारक विभक्ति और उपपद विभक्ति में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

ग) अधिकरण किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।

घ) प्रधान कर्म और अकथित कर्म में भेद स्पष्ट कीजिए।

ङ) सम्बन्ध को कारक क्यों नहीं माना जाता? बताइए।

च) पञ्चमी विभक्ति के पाँच उदाहरण लिखिए।

छ) 'कारक' पर 100 शब्दों में निबन्ध लिखिए।

ज) आधार के तीनों भेदों की व्याख्या कीजिए।

झ) अवधिभूत का क्या अर्थ है?

ञ) 'शेष' शब्द से क्या अभिप्राय है?

3.3 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई के विधिवत् अध्ययन से आप सातों विभक्तियों एवं छः कारकों के बीच सम्बन्धों को विधिवत् समझ चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में कारक एवं विभक्ति के लक्षण को स्पष्ट रूप से बनाया गया है। साथ ही 'प्रातिपदिकार्थलिङ्ग परिमाण वचनमात्रे प्रथमा' सूत्र से लेकर 'सप्तम्यधिकरणे च' सूत्र पर्यन्त सभी सूत्रों की स्पष्ट व्याख्या एवं तद्वत उदाहरण विस्तृत रूप से समझाये गये हैं। कारक विभक्ति एवं उपपद विभक्ति में भेद स्पष्ट किया गया हैं उक्त-अनुक्त के विषय में बताया जा चुका है। प्रधान कर्म एवं अकथित कर्म के विषय में स्पष्ट किया जा चुका है। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई का विधिवत् अध्ययन करके आप कारक एवं विभक्ति के स्वरूप को जान चुके हैं।

3.4 शब्दावली

प्रातिपदिकार्थ – किसी शब्द का उच्चारण करने पर जिस अर्थ की उपस्थिति नियत रूप से (बिना किसी व्यवधान के) होती है, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। यह मुख्यतः 'जाति' और 'व्यक्ति' भेद से दो हैं।

विवक्षा – 'कर्तुरिच्छा विवक्षा' अर्थात् कर्ता की इच्छा ही 'विवक्षा' कहलाती है। 'विवक्षा' अन्य कारकों का आधार है इसीलिए कहा जाता है– ''विवक्षातः कारकाणि भवन्ति।'' वक्ता जिस भाव से किसी वस्तु को प्रस्तुत करना चाहता है, यह उसकी इच्छा पर निर्भर है। वह चाहे तो – 'अग्निः पचति' कहे या अग्निना पचति'।

कारक – क्रिया से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाला, क्रिया का जनक या क्रिया की सिद्धि करने वाला तत्त्व 'कारक' कहलाता है।

विभक्ति – 'विभक्ति' वह तत्त्व है, जिससे संख्या (वचन) और कारक का ज्ञान होता है।

अनभिहित – 'अनभिहित' का अर्थ है– 'अनुक्त'। जिस अर्थ (कर्ता, कर्म, भाव में से किसी एक में) में लकार होता है, वाक्य में वह 'उक्त' होता है, शेष 'अनुक्त' या 'अनभिहित'।

अकथित – 'अकथित' का अर्थ है– 'अविवक्षित'। यदि किसी पदार्थ को कर्ता तद्वत् न कहना चाहे, तो वह पदार्थ कर्ता के लिए 'अकथित' होता है जैसे– कर्ता सम्प्रदान को सम्प्रदान के रूप में न कहना चाहे, तो उसकी कर्म संज्ञा होती है। ऐसे कर्म को 'अकथित कर्म' कहते हैं।

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी. गोरखपुर, गीताप्रेस.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ गोविन्दाचार्य. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, धरानन्द. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास.

वरदराजाचार्य, हिन्दी व्या॰ शास्त्री, भीमसेन. लघुसिद्धान्तकौमुदी. (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन.

शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय. (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास.

वरदराजाचार्य, सम्पा॰ एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल. लघुसिद्धान्तकौमुदी. दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन.

3.6 बोध /अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. (i) (स) छः, (ii) (ब) नियत उपस्थिति, (iii) (अ) प्रथमा (iv) (द) चतुर्थी (v) (अ) वैषयिक आधार।

2. (क) षष्ठी विभक्ति, (ख) अभिव्यापक आधार, (ग) चतुर्थी विभक्ति, (घ) अकथित कर्म, (ङ) औपश्लेषिक आधार।

3. (क) गलत, (ख) गलत, (ग) सही, (घ) गलत।

4. (क) 'कारक' छः हैं– 1. कर्त्ता, 2. कर्म, 3. करण, 4. सम्प्रदान, 5. अपादान और 6. अधिकरण।

   (ख) जहाँ अवयवी के समस्त अवयवों में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, वह अभिव्यापक आधार होता है, जैसे – 'तिलेषु तैलम्'।

   (ग) जो क्रिया से सन्बन्ध हो, क्रिया का जनक हो या क्रिया का साधक हो उसे कारक कहते हैं।

   (घ) क्रिया की सिद्धि में जो सर्वाधिक उपकारक होता है, उसे करण कहते हैं। जैसे– 'बाणेन हतः' (बाण से मारा गया) – वहाँ 'बाण' हनन क्रिया में साधकतम (सर्वाधिक उपकारक) है; अतः 'करण' है।

   (ङ) 'अलम्' के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है– 'हरिः दैत्येभ्यो अलम्'।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY